द्विमासिक पत्रिका

पारमार्थिक पथ प्रदर्शक

श्री कृष्ण चैतन्य सन्देश

श्री चैतन्य गौड़ीय मठ,
सैक्टर 20बी, चण्डीगढ़ - 20

वर्ष. ३६ जनवरी-फरवरी-- 2020 संख्या १
Vol. 39 January - February — 2020 No. 1

1. उपदेश बिन्दु 1

2. परामराध्य श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज..... 2

3. श्रील प्रभुपादजी की प्रश्नोत्तरी 3

4. वैष्णव का संसार और सांसारिक व्यक्ति का संसार 4

5. त्रेता युग 5

6. वृज में एक दिन....... 6

7. श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी की लीलायें 8

8. श्रील भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की लीलायें 10

9. श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की पाणिहाटी में शुभ विजय 12

10. श्रीराधा जी का प्राकट्य / श्रीराधा जी के भक्त 13

11. धूम्रपान हड्डियों को करता है — कमज़ोर 15

12. धर्म परिवर्तित नहीं हो सकता 17

13. जान हथेली पर लेकर गुरू सेवा करने वाले...... 19

14. शुभ कार्य को टालना नहीं चाहिये 21

15. श्रीनित्यानन्द प्रभु 23

उपदेश बिन्दु (परमाराध्य नित्यलीला प्रविष्ट ॐ श्रीश्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज)

1) रावण के पुत्र मेघनाद ने जब स्वर्ग के राजा इन्द्र को हराया था तो तब उसे ये वरदान प्राप्त हुआ था कि जो व्यक्ति 14 वर्ष तक बिना भोजन के रहेगा, जो अपनी इन्द्रियों का पूर्णतया स्वामी होगा, वही उसका अर्थात् मेघनाद का वध कर पायेगा।

श्रीलक्ष्मण जी ने भगवान श्रीरामचन्द्र जी के वनवास के समय 14 वर्ष तक भोजन नहीं किया था और सभी इन्द्रियों को संयत रखने की लीला भी की थी। इसलिये मेघनाद का वध श्रीलक्ष्मण जी के हाथों से हुआ।

सबका सम्मान करना, सहनशील बनना, चरित्रवान बनकर रहना, प्याज – लहुसन नहीं खाना, नशा नहीं करना, संख्यापूर्वक हरिनाम करना व एकादशी व्रत करना इत्यादि छोटी – छोटी तपस्याओं से हम घबरा जाते हैं...... ....लक्ष्मणजी को स्मरण करके हमें अपने जीवन में प्रेरणा लेनी चाहिए कि यदि आवश्यकता पड़े तो गुरु – वैष्णव भगवान की सेवा के लिये हम हरेक तरह की तपस्या करेंगे।

2) भगवान श्रीरामचन्द्र की अन्तरंगा शक्ति श्रीमती सीता देवी को हालाँकि श्रीराम ने वन में जाने से मना किया था किन्तु उन्होंने अपने स्वामी की सेवा के लिये सारे सुख त्याग दिये। अपनी इस लीला से उन्होंने एक सती स्त्री के कर्त्तव्य की शिक्षा दी कि पति के सुख के लिये व श्रेष्ठ वैष्णवों के सुख के लिये तथा भगवान की सेवा के लिए, हमें अपने सुखों को छोड़ देना चाहिए।

3) बलि महाराजजी ने अपने गुरू श्रीशुक्राचार्य जी की आज्ञा को नहीं माना, विभीषणजी ने अपने भाई रावण को, प्रह्लादजी ने अपने पिता हिरण्यकशिपु की बात को नहीं माना, भरतजी ने अपनी माता कैकेयी की आज्ञा की उपेक्षा की थी। क्योंकि शुक्राचार्य, रावण व हिरण्यकश्यपु तथा कैकयी दुनियावी दृष्टि से महान होने पर भी भगवान से विमुख थे। इसी प्रकार याज्ञिक ब्राह्मणों ने भगवान श्रीकृष्ण व बलरामजी के द्वारा भेजे गये वृजवासी बालकों की (भगवद् भक्तों की) उपेक्षा की थी इसलिये पतिव्रता होते हुए भी ब्राह्मण पत्नियों ने अपने पतियों की आज्ञा की अवहेलना की, जब वे उन्हें श्रीकृष्ण – बलराम के पास जाने से रोक रहे थे..............अतः हमें भी हरिभजन में आगे बढ़ने के लिये भगवद् – विमुख लोगों की उपेक्षा करनी चाहिए तथा भगवान के प्रेमी भक्तों की संगति में अधिक से अधिक रहना चाहिए।

4) श्रीबलराम जी, भगवान श्रीकृष्ण जी की सन्धिनी शक्ति के मूल विग्रह हैं। ये बलरामजी ही श्रीकृष्ण की सेवा पाँच स्वरूप अर्थात् श्रीमहासंकर्षण, श्रीकारणोदशायी विष्णु, श्रीगर्भोदशायी विष्णु, श्रीक्षीरोदशायी विष्णु व श्रीशेषनाग जी के रूप में करते हैं। इतना ही नहीं, वे भगवान के सिंहासन, भगवान की पादुका, भगवान के मन्दिर व भगवान के वाहन इत्यादि के रूप में, विविध प्रकार से भगवान की सेवा करते हैं।

5) श्रीकृष्ण ही सभी अवतारों के मूल हैं। श्रीबलराम उनके द्वितीय स्वरूप हैं।

6) मुण्डक उपनिषद में कहा गया है कि श्रीबलदेव जी की कृपा के बिना भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। (मु. उ. 3.2.4)

卐卐卐

परमाराध्य श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी के कुछ उपदेश

1) श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के पद चिन्हों पर चलने वाले साधक व भक्त हमेशा श्रीकृष्ण भक्ति को ही एकमात्र वास्तव में सुख प्रदानकारी जानते हुए, उसी के लिये विभिन्न चेष्टायें करते हैं।

2) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ जैसी संस्थायें व उनके स्थान भगवान की अनन्य भक्ति के अनुकूल अनुशीलन के स्थान होने के साथ-साथ, भक्ति की समृद्धि और भक्ति के विस्तार के लिये भी हैं।

3) श्रीभगवत्-प्रेम की प्राप्ति के लिये जिन्होंने मठ का आश्रय लिया है, वे भोग व त्याग की कसरत करके अपना मूल्यवान समय व शक्ति का व्यय नहीं करते, बल्कि श्रीभगवद् प्रीति के अनुकूल व प्रतिकूल विचारों को अवलम्बन करके शास्त्र और महाजनों द्वारा अनुमोदित क्रियाओं को करते हैं तथा भक्ति की प्रतिकूल भावनाओं को, भक्ति के प्रतिकूल विचारों को, भक्ति के प्रतिकूल कार्यों को तथा हरिभक्ति की प्रतिकूल संगति को छोड़ते चले जाते हैं।

4) कर्मियों की त्याग की भावना अथवा कर्मियों की तपस्या की इच्छा, भविष्य में होने वाले उनके अपने निजी नश्वर इन्द्रियों के सुख की लालसा के कारण ही उत्पन्न होती है।

5) अपने आपको श्रीकृष्ण की सम्पत्ति जान लेने से, अपनी इन्द्रियों की चाह को पूरा करने लिये उत्साह ही नहीं होगा।

6) जब हमारे अन्दर भगवद् दास्य का दृढ़ भाव होगा तो अहिंसा, सरलता, दीनता, सहनशीलता, अमानित्व, मानदत्व तथा क्षमाशीलता अपने-आप आ जायेगी और सभी मनुष्यों से प्रीति का सम्बन्ध अपने आप हृदय में पैदा हो जायेगा।

7) धूर्त्त और पाषण्डी कहीं-कहीं व कभी-कभी मठ-मन्दिर में अपव्यवहार करते हैं, इस आशंका से कि यदि हम वास्तव मंगलप्रदान करने वाले और सर्वजनहितकर प्रतिष्ठान को छोड़ देंगे तो उससे मठ-मन्दिर को कोई असुविधा नहीं होगी, अपितु हम ही मठ-मन्दिर में चल रही विभिन्न प्रकार की भगवान की व भक्तों की सेवाओं के सुयोग से वंचित हो जायेंगे।

卐卐卐

श्रील प्रभुपाद जी

की प्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1 : श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय ने लिखा है – ***गौरांगेर संगिगणे , नित्यसिद्ध करि' माने, से याय वृजेन्दसुत पाश'*** .... इस स्थान पर 'गौरांगेर संगी' किन्हें समझना चाहिये?

उत्तर 1 : जो श्रीगौरांग के विप्रलम्भ भाव की पुष्टि में सहायक हैं..................वे ही उनके संगी हैं।

जो श्रीगौरांग के मनोभीष्ट को पूर्ण करते हैं.. .... वे ही गौरंगेर संगी हैं।

जो नित्य ही श्रीगौरांग की सेवा के लिये उनके निकट रहते हैं................. वे ही श्रीगौरांग के संगी हैं।

श्रीगौरांग महाप्रभुजी ने दक्षिण भारत में प्रचार करते समय कई-कई गाँव के लोगों को 'वैष्णव' बना दिया था। किन्तु वे श्रीमन् महाप्रभुजी के मनोभिष्ट कार्य में पूर्ण रूप से जुटे नहीं थे। अपना सर्वस्व समर्पण कर, पूर्ण रूप से श्रीमन् महाप्रभुजी का उन्होंने संग नहीं किया..................उन्हें कैसे 'गौरांगेर संगी' बोल सकते हैं। जिन्होंने अपने जीवन के हर क्षण में साधना करके महाप्रभुजी का संग नहीं किया, उन्हें 'संगी' नहीं कहते। हाँ, वे उनके भक्त हो सकते हैं।

जिन्होंने परिपूर्ण रूप से भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की आज्ञा पालन की हो, जिन्होंने उनकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए अपना सब कुछ समर्पण कर दिया हो तथा जिन्होंने अपने जीवन का एक-एक क्षण, जीवन की एक-एक क्रिया महाप्रभुजी की प्रसन्नता के लिए समर्पित की हो, उन्हें ही हम महाप्रभुजी का संगी कह सकते हैं।

संगी का एक अर्थ '**पार्षद**' भी होता है।

ठाकुर नरोत्तम, श्रीमन् चैतन्य महाप्रभुजी के प्रकट काल में आविर्भूत नहीं हुए थे, फिर भी वे श्रीमहाप्रभुजी के संगी हैं। क्योंकि वे श्रीमन् महाप्रभुजी के मनोभीष्ट को पूरा करने के लिये ही इस जगत में आये। श्रील नरोत्तम ठाकुर जी नित्य ही श्रीमन् महाप्रभुजी की साक्षात् सेवा में पूरी तरह लगे रहे हैं; साथ ही वे हमेशा ही महाप्रभुजी के हृद्यगतभाव में विभावित रहे हैं। अत: श्रील नरोत्तम ठाकुर जी विप्रलम्भ भाव के परिपोष्ठा हैं। अर्थात् श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय, नित्य सिद्ध हैं तथा श्रीमहाप्रभुजी के संगियों में इनका भी नाम आता है।

प्रश्न 2: गोलोक में कंस और जरासन्ध आदि के व्यतिरेक भाव क्या हैं?

उत्तर 2: गोलोक तो शुद्ध चिन्मय धाम है। वहाँ प्रपंच जगत के किसी भी प्रकार की हीनता, नश्वरता अथवा अवरता नहीं है। अर्थात् गोलोक धाम में हिंसा या रक्तपात आदि कुछ नहीं होता। तब भी लीला पुष्टि के लिये वहाँ पर द्वितीय अवस्था का भाव रहता है।

श्रीनन्द-यशोदा आदि या अन्यान्य श्रीकृष्ण के सेवकों के हृदय में अनुकूल श्रीकृष्ण-सेवोत्कर्ष नव-नवायमान भाव की वृद्धि के लिये कंस आदि के अस्तित्व का एक मूलभाव वहाँ पर है। परन्तु वहाँ पर अर्थात् गोलोक धाम में यहाँ की लीला की तरह स्थूल रूप से ये कंस आदि का स्वरूप नहीं है।

卐卐卐

वैष्णव का संसार और सांसारिक व्यक्ति का संसार

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

स्वजातीयाशय–स्निग्ध सद्गोष्ठी के अतिरिक्त अन्यत्र रसालाप नहीं करना चाहिये। अर्थात् यदि आप श्रीकृष्ण भक्त हैं तो केवल श्रीकृष्ण भक्तों से ही हरिचर्चा करें। यदि आप धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष से भी ऊपर श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति के लिये प्रयास कर रहे हैं तो ऐसे भक्तों के साथ ही भगवद्–प्रेम–रस की चर्चा करें, जिनकी हरिभक्ति की साधना का इतना महान उद्देश्य हो। इसके इलावा अधिकतर ऐसे भक्तों की संगति में रहें, जिनका स्वभाव, व्यवहार व बातचीत करने का तरीका बहुत ही मीठा हो।

वैष्णव जगत की समृद्धि के सम्बन्ध में भगवद्–भक्तों को छोड़कर दूसरों का संग नहीं करना चाहिये। अपनी पत्नी को वैष्णव धर्म में दीक्षित कराकर उसे जहाँ तक हो सके, उसे वैष्णव तत्त्व की शिक्षा देनी चाहिये। बड़े ही सौभाग्य से वैष्णव पत्नी मिलती है। वैष्णव पत्नी के साथ वैष्णव संसार समृद्ध करने से बहिर्मुख प्रवृत्ति की अधिक चर्चा नहीं होती। इसके इलावा इस वैष्णव संसार में जो संतान पैदा हो, उनको भी भगवान् का दास समझना चाहिये।

बहिर्मुख संसार और वैष्णव–संसार में केवल मात्र एक निष्ठा का भेद है। बाहर से दोनों तरह के लोगों का व्यवहार व क्रिया–कलाप एक ही समान दिखते हैं। जैसे बहिर्मुख लोग भी विवाह करते हैं, धन संग्रह करते हैं, रहने के लिये मकान आदि का निर्माण करते हैं तथा संतान आदि पैदा करते हैं, परन्तु उनकी भावना ऐसी होती है कि इन कार्यो से वे जगत की सुख–समृद्धि करेंगे अथवा जगत में स्वयं भी सुख भोग करेंगे। जबकि वैष्णव उन्हीं की तरह के कार्यों को करते तो हैं परन्तु वैष्णव लोग जो कुछ भी करते हैं, भगवान की सेवा के लिये ही करते हैं। अर्थात् भगवद्–विमुख लोग अपने लिए बढ़िया–बढ़िया खाना पकाते हैं और खाते हैं जबकि भगवान के भक्त बढ़िया–बढ़िया व पवित्र खाना बनाते हैं, फिर पहले भगवान को खिलाते हैं और बाद में उनका प्रसाद पाते हैं। भगवद्–विमुख लोग सभी को अपने स्वार्थ के लिये प्रयोग करते हैं जबकि भगवान के भक्त अपनी स्त्री, अपने पति, अपने दोस्त व अपने बच्चों को भी बड़े सुन्दर तरीके से भगवान की सेवा में नियोजित करते हैं। इसी प्रकार भगवान से विमुख लोग लोक–गीत व दुनियावी गाने गाते हैं व नाचते हैं जबकि भगवान के भक्त, भगवान व भगवान के भक्तों का अथवा महामन्त्र का संकीर्तन करते हुए, भगवान की प्रसन्नता के लिए खूब गाते व नृत्य करते हैं।

वैष्णव लोग अपने जीवन की हर परिस्थिति में सन्तुष्ट रहते हैं। जबकि बहिर्मुख व्यक्ति उच्चाभिलाष या भोग–मोक्ष की स्पृहा से उत्पन्न काम, क्रोध आदि के वशीभूत होकर दिन–रात बेचैन रहते हैं। शास्त्रों की विधियों को मानते हुए भगवान के वैध भक्त वैष्णव संसार की स्थापना करके उसके द्वारा भक्ति की चर्चा को समृद्ध करने के लिये व वैष्णव संसार की उन्नति का प्रयास करते हैं।

सब जीवों पर दया करना, वैष्णव का एक प्रधान गुण होता है। वैष्णवगण बड़ी लगन से सभी जीवों को वैष्णव बनाने के लिये, नाना प्रकार के उपायों को सृजन करते हैं।

वैष्णवगण परमेश्वर के प्रति प्रेम, विशुद्ध भगवद् भक्तों के प्रति मित्रता और कनिष्ठाधिकारी तथा बहिर्मुख व्यक्तियों के प्रति कृपा करते हैं।

जो जीव सौभाग्यवशतः सत्संग प्राप्त करके भक्ति पथ पर चलने की इच्छा करते हैं, उनके प्रति भागवतगण असीम कृपा वितरण करके उनको परमार्थ की शिक्षा देते हैं तथा उनमें शक्ति संचार करके उनका उद्धार करते हैं। बहुत से दुर्भागे लोग कुतर्क के बल पर किसी भी प्रकार से आत्मोन्नति स्वीकार नहीं करते। ऐसे दुर्भागे लोगों की उपेक्षा करना ही अच्छा है।

卐卐卐

त्रेता युग

(पूज्यपाद त्रिदण्डी स्वामी श्रीभक्ति निकेतन तूर्याश्रमी महाराज)

सत् युग और द्वापर युग के मध्य में कार्तिक मास की शुक्ल नवमी तिथि को त्रेता युग प्रारम्भ हुआ। इसीलिये कार्तिक मास की शुक्ल नवमी तिथि बहुत शुभ मानी जाती है। त्रेता युग में भगवान वामन, भगवान परशुराम व भगवान रामचन्द्र जी आये। इस युग में पुण्य के तीन पाद व पाप का एक पाद था। यानिकी त्रेता युगमें 75 प्रतिशत धर्म था तथा 25 प्रतिशत अधर्म का बोलबाला था। इस समय पुष्कर ही प्रधान तीर्थ था, सभी ब्राह्मण हवन करते थे। उनके प्राण उनकी हड्डियों में होते थे। त्रेता युग में मनुष्य का आकार 14 हाथ, उम्र लगभग दस हज़ार वर्ष हुआ करती थी। त्रेतायुग 12,96,000 वर्ष का हुआ करता था। इसी युग में सूर्य वंशी बाहुक, सगर, अंशुमान, असमंजा, दिलीप, भगीरथ, अज, दशरथ, श्रीरामचन्द्र, कुश व लव आदि राजचक्रवर्ती राजा हुए।

इस काल के लोग दानी हुआ करते थे। अधिकतर राजा स्वयं यज्ञ किया करते थे। त्रेतायुग के राजा प्रजा का पालन करने वाले थे। अत: वे स्वर्ग प्राप्त करते थे। त्रेता युग में लोग स्वभाविक ही दयावान थे व अपने ब्रह्मचारी आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम व संन्यास आश्रम में रहते हुए, लोग अपने-अपने आश्रम के नियमों का पालन करते थे। इस में यज्ञ-परायण, श्रीविष्णु-ध्यान व्रती, क्षत्रिय सभी प्रकार के भूमि के अधिकार व ठीक से प्रजा पालन करने वाले होते थे। त्रेतायुग में सभी क्षूद्र अधिकार वाले लोग दूसरों की सेवा में तत्पर रहते थे तथा उस युग में ब्राह्मण उदार चित्त वाले, सत्यवादी तथा धन व वस्तु का अधिक संग्रह नहीं करते थे। वे अपना अधिक समय वेद पढ़ने तथा दूसरों को पढ़ाने में, राजा को सही सलाह देने में तथा भगवान श्रीविष्णु के एक अच्छे सेवक के रूप में थे। उस युग में सभी स्त्रियाँ पतिपरायण, सभी पुत्र पितृ-मातृ-भक्त व पृथ्वी अनाज से भरपूर हुआ करती थी।

त्रेतायुग के लोग इस तारक ब्रह्म नाम का जप किया करते थे -

राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदनः।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन।।

卐卐卐

वृज में एक दिन.....

वृज की बात है। अरुणोदय काल से कुछ पूर्व ही श्रीमती वृन्दा देवी उठ बैठीं। उन्होंने अपने सभी पार्षदों को समझा दिया कि किसे क्या-क्या करना है। अरुणोदय होते देख, उन्होंने सखियों को इशारा किया, जिससे वे मधुर स्वर में बातचीत करने लगीं व चलने-फिरने की आवाज़ें करने लगीं। श्रीराधाजी व श्रीकृष्णजी सो रहे हैं। गोपियों की आवाज़ों से उनमें कोई हिलजुल नहीं हो रही है, ऐसा देखकर वृन्दादेवी जी ने पक्षियों को आदेश दिया कि वे राधाजी व श्रीकृष्ण को जगायें। सभी पक्षी श्रीयुगल किशोर की सेवा के लिए उत्सुक थे, अत: चहचहाने लगे। उनका चहचहाना भी, उनकी अपनी भाषा में राधा-कृष्णजी का गुणगान ही था। जो भी हो पक्षियों के चहचहाने से युगल किशोर की नींद तो टूट गई किन्तु उन्होंने आँखें नहीं खोलीं। इसके बाद वृन्दादेवी के इशारे पर भगवान श्रीहरि का प्रिय शुक उनका गुणगान करने लगा और राधाजी की प्रिय शारी राधाजी का गुणगान करने लगी।

शुक – हे कृष्ण! गोकुल के मित्र! अमृत के सागर! उठिये! उठिये! शीघ्र ही घर जाइये।

शारी – हे राधा! मेरी सखी! रात्री शेष में शयन करना ठीक नहीं है। उठिये! उठिये।

शुक – हे कृष्ण! गोकुल के सौभाग्य! हे गोविन्द! हे नन्द महाराज का आनन्द वर्धन करने वाले! आपकी जय हो! कृपया उठिये। सूर्योदय हो गया है, अब तो उठिये।

शारी – हे राधा! उठो! घर को लौटो। अभी तो सभी मार्ग सूने पड़े हैं।

शुक व शारी की बातों के बीच में दक्ष नामक तोते ने कहा – हे कृष्ण! घर में सेविकायें शीघ्र ही दधि मन्थन प्रारम्भ करेंगी। माता यशोदा उठेंगी। व आपको न देखकर घबरा जायेंगी। कृपया शीघ्रता करें व गुप्त रूप से घर को प्रस्थान करें। कालिन्दी, सुरभी आदि गायें आपको पुकारेंगी। पौर्णमासी जी भी शीघ्र ही आपके कक्ष में आने वाली हैं। उठिये, उठिये।

शुक – मेरे कृष्ण तो बहुत सुन्दर हैं। वे तो मदन-मोहन हैं।

शारी – तुम्हारे कृष्ण तभी मदनमोहन हैं, जब तक मेरी राधा उनके बायीं ओर खड़ी हैं, नहीं तो वे सिर्फ मदन ही रह जायें।

शुक – मेरे श्रीकृष्ण ने इतना बड़ा गिरिराज उठा लिया था, बायें हाथ की सबसे छोटी अंगुली पर।

शारी – बिल्कुल ठीक! परन्तु सारी ताकत तो मेरी राधाजी ने ही उनकी अंगुली में संचारित की थी।

...............शुक श्रीकृष्ण की महिमा बोलता तो उससे एक कदम आगे शारी श्रीराधाजी की महिमा बोलती। इस तरह शुक-शारी की चहचहाहट सुनकर राधाजी आँख खोल लेती हैं। श्रीकृष्ण कुछ-कुछ हिलने लगे परन्तु उन्होंने आँखें नहीं खोलीं।

शुक-शारी के चहचहाने के समय कक्खटी नाम की एक बन्दरिया अपनी गर्दन उठा-उठाकर सेवा करने की भावना से बार-बार वृन्दादेवी जी की ओर ताकती हैं और आँखों के इशारे से वृन्दा देवी जी को प्रार्थना करती हैं कि श्रीराधाकृष्ण जी को जगाने की ये सेवा उसे दी जाय। मैं अपनी आवाज़ से उन्हें उठा दूँगी। वृन्दा देवी बार-बार ये सोचती हैं कि इस बन्दरिया की आवाज़ तो बड़ी कर्कश है, सुबह-सुबह तीखी आवाज़ में राधाकृष्णजी को जगाना ठीक नहीं। ये सोचकर आँखों के इशारे से ही वृन्दादेवी कक्खटी

को चुपचाप बैठी रहने को बोलती हैं।

परन्तु गोपियों की बातचीत व शुक-शारी आदि पक्षियों की चहचहाहट से भी जब श्रीकृष्ण नहीं जगे तो वृन्दादेवी ने कक्खटी वानरी को जगाने की सेवा दी। श्रीराधाकृष्णजी ये सेवा पाकर कक्खटी बड़ी खुश हो गयी और खुक्-खाक् की आवाज़ करती हुई वृक्ष की एक डाल से दूसरी डाल पर कूदने लगी।

कक्खटी की आवाज सुनकर श्रीगोपीनाथ भगवान ने आँखें खोलीं। भगवान की ये लीला देखकर सभी गोपियों को ये लगा कि राधाजी की इस प्यारी बन्दरिया को सेवा देने के लिये ही श्रीकृष्ण आँखें नहीं खोल रहे थे।

जो भी हो आँखे मलते हुए श्रीकृष्ण ने राधाजी को निहारा और आँखों ही आँखों में बड़े ही सम्मान सहित राधाजी ने श्रीकृष्ण का अभिवादन किया और विदाई लेकर अपनी सखियों के साथ यावट की ओर चल दीं। जबकि श्रीकृष्ण नन्दगाँव की ओर चल दिये।

(प्रथम याम साधन – निशान्त लीला)

देखिया अरुणोदय, वृन्दादेवी व्यस्त हय,
कुँजे नाना रव कराइल।
शुक-शारी पद्य शुनि, उठे राधा-नीलमणि,
सखीगण देखि हृष्ट हैल।।
कालोचित सुललित, कक्खटीर रवे भीत,
राधाकृष्ण सतृष्ण हइया।
निज निज गृहे गेला, निभृते शयन कैला,
दुँहे भजि से लीला स्मरिया।
एइ लीला स्मर आर, गाओ कृष्णनाम।
कृष्णलीला प्रेमधन, पाबे कृष्णधाम।।

इधर शेष रात्रि के समय श्रीनन्द भवन में मनोहर दुन्दुभियां बजने लगीं। आनन्द से सरोबार गोलोकवासी उठने लगे। सभी को श्रीकृष्ण के दर्शनों की चाह सताने लगी। सूत-मागध एवं वन्दीजन (जो स्तुति पाठ करते हैं) अपने-अपने दल के साथ श्रीनन्दराय के नगर के समृद्धिशाली विशाल सिंह द्वार की सर्वोच्च अट्टालिका पर चढ़ गये एवं पूतना से लेकर दन्तवक्र, इत्यादि (असुर वध लीला) को नये-नये सुरों, पद्यों एवं स्तुति आदि के रूप में अभिनय करते हुए गाने लगे। श्रीमती यशोदा, गोप-गापियां श्रीकृष्ण की लीलाओं को सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने गाने-बजाने वालों को उपहार स्वरूप वस्त्र व आभूषण भेंट किये।

श्रीकृष्ण जी की वंशी ध्वनि गूँजने लगी तो समय जैसे वहीं रुक गया। सभी उसी में खो गये। कुछ समय में सभी सचेत हुए और अपने-अपने कार्यों में जुट गये। अधिकतर गोपियां दही मथने लगीं, जिससे चारों ओर दधि मथने के शब्द गूँजने लगे।

किन्तु वृज में कुछ ऐसे भी थे, जो अभी तक सो रहे थे। वे थीं कुछ गोपियां। जो इस विश्वास से जी रहीं थीं कि श्रीकृष्ण ही उनके सर्वस्व हैं, उनके वास्तविक पति हैं, वे तन-मन से एकमात्र श्रीकृष्ण की सेवारत थीं। वे तो अपने-अपने घरों में उठने का नाम ही नहीं ले रहीं थीं। उन्हें विश्वास था कि श्रीकृष्ण उन्हें जगाने आयेंगे और वे प्रातः की शुरुवात उनके दर्शनों से ही करेंगी। भगवान तो भक्त वत्सल हैं, हरेक भक्त की हरेक इच्छा को पूरा करना जानते हैं। भगवान श्रीगोपीनाथ ने अपना ऐश्वर्य प्रकाशित किया और एक ही समय में सभी के घर के भीतर अलग-अलग स्वरूप से प्रकट होकर उन्हें जगाने पहुँच गये। हैरानी की बात ये कि सब गोपियों के पास होते हुए भी वे यशोदाजी की गोद में भी थे।

(आगे की लीला अगले अंक में)

卐卐卐

श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज 'विष्णुपाद' जी की कुछ लीलायें।

एक बार चण्डीगढ़ में श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी अपने कमरे में थे कि किसी ने आपके कमरे का दरवाज़ा खटखटाया। आपने दरवाज़ा खोला। आपकी एक शिष्या श्रीमती विमला सिंगला सामने खड़ी थी। उसने आपको प्रणाम किया व बोली – महाराज! महाराज! मैं आपके मठ के लिये अपने बगीचे से बहुत बड़ा तुलसी का पौधा लायी हूँ। आप उसे मठ में लगा लें।

आपने जवाब में कहा – अच्छा!

बाहर आकर देखा तो चारों ओर मिटटी फैली थी, जैसे कोई पौधे को जमीन पर खींचता हुआ लाया हो। आगे जाकर देखा तो आपने तुरन्त प्रणाम किया। बहुत विशाल तुलसी जी का पौधा था। आप समझ गये कि ये सरल माताजी इस तुलसी के वृक्ष को कहीं से घसीट कर लायी है, जो कि गलत है। परन्तु उस समय अपनी शिष्या को आपने कुछ कहा नहीं। बल्कि एक ब्रह्मचारी शिष्य को बुलवाकर, क्यारी बनवाई और बड़े सम्मान से तुलसी जी के वृक्ष को वहाँ विराजित कर दिया।

माताजी का तुलसी जी के प्रति अपराध न हो, इसलिए माताजी से उस पौधे को पानी से सिंचवाया।

शिष्या बहुत सरल स्वभाव की थी। सोचा कि तुलसी जी को देखकर गुरूजी प्रसन्न हो जायेंगे। मठ के प्रति श्रद्धा का भाव, अपने गुरूजी के प्रति श्रद्धा का भाव था उनका, तभी तो इतना कष्ट कर न जाने कहाँ से पौधा लाने का विचार किया उसने। उसकी कोमल श्रद्धा न टूटे, श्रीकृष्ण भजन के मार्ग से कहीं च्युत न हो जाये, शायद इसी कारण से आपने उसके अपराध बोध के भार को उसके ऊपर आने नहीं दिया। फिर ऐसा भी माना जाता है कि शरण्य, शरणागत का अपराध नहीं लेते।

भगवान की प्रिया हैं -- तुलसी जी। वो माताजी अपनी भजन क्रियाओं से अर्थात् तुलसी जी को प्रणाम करना, तुलसी जी को जल देना व तुलसी जी की परिक्रमा करना इत्यादि से तुलसी जी को प्रसन्न कर लेंगी तो वे उन माता को क्षमा कर देंगी। अगर आपकी डांट से वो शिष्या भजन छोड़ देती तो अपराध का मार्जन कैसे होता? अपराध ही होते रहते। और वो प्राणी सदा के लिये श्रीकृष्ण भजन से विमुख हो जाता।

अपनी इस लीला के द्वारा श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी ने आचरण करके हम सभी को यह शिक्षा दी कि किसी के द्वारा गलती होने पर भी उसे डांटने की बजाय, अपन मधुर व्यवहार के द्वारा उसके भावों को पढ़ने का प्रयास करना चाहिये और उसके साथ ऐसा मधुर व्यवहार करना चाहिये कि जिससे वह भजन मार्ग से नहीं हटे।

卐卐卐

(2)

एक बार परमाराध्य श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी के गुरूभाई बंगाल से आपको मिलने आये। उन दिनों आप पंजाब में भगवान की शुद्ध भक्ति हेतु प्रचार के कार्यक्रमों से वापिस ही आये थे। बातों ही बातों में उन गुरूभाई ने आपसे पूछा – और माधव महाराज जी! कैसा चल रहा है? पंजाब में तो आपका प्रचार कार्यक्रम का खूब ज़ोरों पर है। एक बात बतायें कि आप इतने प्रचार कार्य को व इतने सारे मठों को कैसे संभाल लेते हैं?

आप हँस पड़े व बोले – 'छागल दिये नांगल कोच्छी' अर्थात् बकरियों के द्वारा हल चला रहा हूँ। कहने का मतलब हल जोतने के लिये तो बैलों की जरूरत होती है परन्तु बैलों के अभाव में बकरे–बकरियों के द्वारा ही मैं हल जोत रहा हूँ।

इतने सुन्दर ढंग से श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी ने जवाब दिया कि कार्य तो मेरा बढ़िया चल रहा है, बस इतना है कि योग्य शिष्यों के अभाव में जो भी शिष्य मेरे पास हैं, उनके द्वारा ही मैं प्रचार के सभी कार्य व मठ की विभिन्न सेवायें कर रहा हूँ व उनसे करवा रहा हूँ।

आप इस बात को कुछ इस प्रकार से भी व्याख्या करते थे कि पुराने मुड़े–तुड़े बर्तन में दाल बनानी है और अच्छे बर्तन हैं नहीं, तो क्या किया जाए, उन्हें ठोक–ठोक कर ठीक करना होगा और दाल बनानी होगी। यानिकी सिद्ध पुरुष या पूरी तरह से योग्य व्यक्ति आपको हर समय नहीं मिलेंगे। जो भी व्यक्ति या सेवक आपके पास हैं, प्रयास करके उनको ही जैसे–तैसे योग्य बनाकर भगवान की सेवा करते रहो।

आप एक और उदाहरण दिया करते थे। वह ये कि अगर हम कम्बल में से एक–एक करके धागे खींचते चले जायेंगे तो अन्त में कम्बल ही नहीं बचेगा। अर्थात् गल्तियाँ तो सभी से होती हैं। हमें दूसरों की गल्तियों को नज़रंदाज करने की कला सीखनी होगी। साथ ही हमें अपने बारे में भी सोचना होगा कि क्या मुझसे कभी कोई गलती नहीं हुई या भविष्य में नहीं हो सकती?

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद जी मठ को गौड़ीय अस्पताल कहा करते थे। इसमें आने वाले डाक्टर कम, रोगी ज्यादा हैं। सब रोगी अर्थात् सांसारिक रोग से ग्रस्त। कोई ज्यादा रोगी तो कोई हल्का रोगी। लेकिन हैं –– सभी रोगी। अगर रोगियों को हस्पताल से निकालते ही रहेंगे तो इलाज किसका होगा? अतः हमें हर तरह के व्यक्ति को, उसके कल्याण के लिये मीठे व्यवहार, सहनशीलता, अपना आदर्श तथा क्षमागुण के साथ सबको हरिभक्ति में साथ लेकर चलना होगा।

卐卐卐

(3)

एक बार परमाराध्य श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी अपनी श्रीकृष्ण नाम प्रचार वाहिनी के साथ बंगाल में प्रचार कर रहे थे। आपको सूचना मिली कि आपके गुरूभाई............आपसे मिलना चाहते हैं। आपने सोचा कि गुरूभाई को क्या कष्ट देना है, स्वयं ही वहाँ उनसे मिलने चले जाते हैं। आप मिलने गये। काफी स्नेह का आदान–प्रदान हुआ, श्रीकृष्ण कथा हुई। जब आप आने को उद्यत हुए तो उन्होंने कहा – माधव महाराज! आप हमारे पेट पर लात न मारें। अगर सम्भव हो तो अन्य स्थान पर प्रचार कार्य करें।

आप अपने को वैष्णव दास ही समझते थे। अतः 'जो आज्ञा' कहकर आप वहाँ से आ गये।

उस दिन के बाद से आपने बंगाल में अधिक प्रचार कार्यक्रम नहीं किये। आप सुदूर पंजाब, हरियाणा, हिमाचल व दक्षिण भारत के हैदराबाद इत्यादि इलाकों में प्रचार में व्यस्त हो गये। ऐसा था आप का गुरूभाईयों के प्रति प्रेम।

卐卐卐

श्रीलगुरूदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की लीलायें

(1)

मठ के एक निष्ठावान भक्त एक बार आपके पास आये। प्रणाम करके निवेदन किया – गुरूजी! मेरे पिताजी मुझे मठ में ज्यादा आने से मना करते हैं। दुकान में माला करने पर डाँटते हैं। जब मैं तिलक लगाकर दुकान पर जाता हूँ तो वे प्रसन्न नहीं होते। बताइये मैं क्या करूँ?

आपने कहा – माता–पिता अपनी संतान का कभी भी बुरा नहीं चाहते। हमेशा मंगल ही चाहते हैं। जैसा वे चाहते हैं, जैसा वे बोलते हैं, वैसा ही करो।

शिष्य ने कुछ हैरान होकर पूछा – जैसा वो बोलें, वैसा करुँ?

आपने अपनी चिर–परिचित मुस्कान के साथ 'हाँ' में सिर को हिलाया और कहा जैसा पिताजी बोलें, वैसा करो।

कुछ दिन और बीते उस पिता ने भी तिलक लगाकर दुकान पर आना शुरु कर दिया और अपने पुत्र से कहा जब हम कुछ गलत नहीं करते हैं तो तिलक लगाने से क्या डरना, तिलक लगाने में क्या शरम करनी!

धीरे - धीरे उस पिता की व उनके उस परिवार की गिनती मठ के निष्ठावान भक्त - परिवार के रूप में होने लगी।

卐卐卐

वो भक्त प्रणाम कर बाहर आया व साथ में जो प्रभुजी थे, उनसे बोला - अब क्या करें?

दूसरे भक्त ने कहा - देखो भाई! गुरूजी ने कहा है तो अच्छा ही होगा। अब जैसा वे कह रहे हैं, वैसा ही करो।

उस भक्त ने गुरूजी को स्मरण करते हुए वैसा ही करना प्रारम्भ कर दिया। समय पर अपने काम पर जाने लगा, माता - पिता जैसा कहते, वैसा ही करने लगा, मठ में ज्यादा आना - जाना छोड़ दिया, दुकान पर माला व तिलक के साथ जाना छोड़ दिया।

2 - 3 महीने ही बीते होंगे तो एक दिन उनके पिताजी ने पूछा - आजकल मैं देखता हूँ कि तू मठ नहीं जा रहा। क्या हो गया?

भक्त - आपने मना किया था, इसलिये ज्यादा नहीं जा रहा हूँ।

समय का ऐसा चक्र चला। परिवार पर कुछ इस तरह गुरूजी की कृपा बरसी कि एक दिन वही पिताजी अपने पुत्र को कहते हैं कि मेरा मन करता है कि मैं दुकान पर माला ले आऊँ और जब समय हो जप लिया करूँ। तू भी ले आया कर।

(2)

एक बार मठ के एक निष्ठावान भक्त जगद्गुरू नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर महाराज जी के शिष्य नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज जी के दर्शनों के लिये गये।

वहाँ पर महाराजजी ने उनसे पूछा - आपकी दीक्षा किनसे हुई?

भक्त ने हाथ जोड़कर कहा - परामराध्यतम् श्रील भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी से।

तब श्रील पुरी गोस्वामी महाराज जी ने कहा - सेई तो सद्गुरू! सेई तो सद्गुरू! अर्थात् **वे ही तो सद्गुरू हैं। वे ही तो सद्गुरू हैं।** तुम बहुत भाग्यशाली हो कि ऐसे गुरू से आपकी दीक्षा हुई।

卐卐卐

श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की पाणिहाटी में शुभ विजय

भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के आदेश देने पर श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुजी, शुद्ध भक्ति के प्रचार के लिए नीलाचल यानिकी पुरी धाम, उड़ीसा से बंगाल आये।

ऐसे में एक दिन श्रीनित्यानन्द प्रभुजी श्रील राघव पण्डित जी के पाणिहाटी स्थित घर पर आये।

भक्तों की इष्ट-गोष्ठी में कीर्तन होने लगा, श्रीनित्यानन्द प्रभुजी के पार्षद श्रीमाधव घोष एवं श्रीगोविन्द घोष व श्रीवासुदेव घोष प्रमुख कीर्तनीया के रूप में कीर्तन करने लगे। उसी कीर्तन में भावाविष्ट होकर श्रीनित्यानन्द प्रभुजी नृत्य करने लगे और अन्त में श्रीविष्णु सिंहासन पर जा बैठे।

श्रीनित्यानन्द जी जब सिंहासन पर विराजमान हो गये तो श्रीराघव पण्डितजी ने भक्तों के साथ मिलकर उनका अभिषेक किया। अभिषेक के बाद, उन्हें दिव्य माला और वस्त्र आदि प्रदान किये गये।

श्रीनित्यानन्दजी ने श्रीकृष्ण प्रेम में भावाविष्ट होकर श्रीराघव पण्डितजी से कहा कि कदम्ब के फूलों की माला ले कर आयें।

श्रीराघव पण्डित – हे प्रभु! किन्तु ये समय तो कदम्ब के फूलों के फूटने का नहीं है।

श्रीनित्यानन्द प्रभु – आप अपने घर से बाहर जाकर देखो तो सही। कदम्ब के सुगन्धित फूल मिल जायेंगे।

श्रीनित्यानन्द प्रभुजी के इस प्रकार कहने पर श्रीराघव पण्डित जी घर से बाहर गये व कदम्ब के फूलों को खोजने लगे।

कुछ ही दूर जाकर उन्होंने देखा कि गलगल के वृक्ष पर कदम्ब के फूल खिले हुए हैं। ऐसा अद्‌भुत दृश्य देखकर राघवजी बहुत ही विस्मित हो गये।

श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की अलौकिक शक्ति के बारे में सोचते हुए, वे जल्दी-जल्दी कदम्ब के फूलों को पेड़ से उतारने लगे। काफी सारे फूलों को घर लाकर उन्होंने उनकी बड़ी सी माला बना दी और फिर उसे श्रीनित्यानन्दजी को पहना दी।

सब कुछ ठीक चल रहा था कि कुछ ही समय बाद वहाँ दमनक पुष्पों की सुगन्ध से सारी दिशायें महक उठीं। राघवजी ने श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी को पूछा कि मैंने तो आपको कदम्ब के फूलों की माला पहनायी थी, पर ये दमनक फूलों की इतनी सुगन्ध कहाँ से आ रही है?

राघवजी की बात सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुजी मुस्कुराये व कहने लगे कि अभी-अभी श्रीगौर सुन्दर जी दमनक फूलों की माला पहन कर कीर्तन श्रवण करने के लिये नीलाचल से यहाँ आये हैं। उनके गले की माला से ये सुगन्ध आ रही है।

इस प्रकार अलौकिक, अद्‌भुत व दिव्य रूप से श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने पाणिहाटी में शुभ विजय की अर्थात् पाणिहाटि नामक स्थान पर श्रीचैतन्य महाप्रभुजी पधारे।

श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुसार –

शचीर मन्दिरे आर नित्यानन्द नर्तने।
श्रीवास कीर्तने आर राघव भवने।।
एई चारि ठाईं प्रभुर सदा 'आविर्भाव'।
प्रेमाकृष्ट हय प्रभुर सहज स्वभाव।।

अर्थात्, माता शची के कमरे में, श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुजी के नृत्य में, श्रीवास पण्डित जी के कीर्तन में तथा श्रीराघव पण्डित जी के भवन में – श्रीमन् महाप्रभुजी का नित्य आविर्भाव रहता है। कारण यह है कि श्रीमहाप्रभुजी इन भक्तों के प्रेम से आकृष्ट होकर हमेशा उनके साथ रहते हैं।

卐卐卐

श्रीराधाजी का प्राकट्य

एक दिन गोलोक में श्रीकृष्ण विरजा के पास थे। बातचीत के दौरान राधाजी अप्रसन्न हो गईं। राधाजी की नाराज़गी देखकर विरजाजी घबरा गईं व नदी बन गईं। विरजा की सखियाँ भी छोटी – छोटी नदियां जा बनीं। पृथ्वी की बहुत सी नदियाँ व सातों समुद्र विरजा से ही उत्पन्न हुए हैं।

बातों ही बातों में जब राधाजी ने श्रीकृष्ण से अपना विरोध जताया तो ये बात श्रीकृष्ण के सखा व राधाजी के भाई सुदाम जी को पसन्द नहीं आयी। उसने बीच में कूदते हुए ऐसी बातचीत का विरोध किया। श्रीहरि की इच्छा से राधाजी को सुदाम का इस प्रकार बीच में आना अच्छा नहीं लगा और इसे अनुपयुक्त व्यवहार जानकर राधा जी ने उसे असुर होने के लिये कह डाला।

जिसके जवाब में सुदाम जी ने राधाजी को कहा कि आप भी गोलोक धाम से भूलोक पर जाकर जन्म ग्रहण करेंगी और सौ साल तक श्रीकृष्ण का विरह सहन करेंगी।

श्रीहरि की इच्छा से ही ये सब हुआ ताकि जगत वासियों को पारकीय भाव की श्रेष्ठता व उसमें विरह की उत्तम स्थिति का पता चल सके।

उधर पृथ्वी पर, वृज में श्रीवृषभानुजी कालिन्दी के तट पर सर्वोत्तम कन्या प्राप्त करने के लिये आराधना करते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि 100 पंखुड़ियों वाला एक विशाल व अति आकर्षक कमल का फूल उनकी ओर बहता चला आ रहा है। वे उसे देख ठिठके क्योंकि नदी के बहाव से अलग दिशा में वह वो कमल अपने आप ही बहता हुआ उनकी ओर आ रहा था। उनके पास आते ही कमल पूरी तरह से खिल उठा। सुन्दर कमल के पुष्प के बीच में एक सुन्दर कन्या को देखकर श्रीवृषभानु महाराज जी बड़े आश्चर्यचकित हुए और बड़े प्यार से उन्होंने उसे उठाया व उसे घर ले आये। घर आकर बड़े स्नेह के साथ उन्होंने उस सुन्दर कन्या को अपनी पत्नी कीर्तिदा को लाकर दिया। पति – पत्नी सुन्दर कन्या को प्राप्त कर बहुत खुश हुए।

इस तरह एक विशाल भव्य कमल पुष्प में, अद्भुत तरीके से श्रीराधाजी का इस धरातल पर प्राकट्य हुआ। राधाजी दिव्य हैं तो उनका संसार में प्राकट्य भी दिव्य है।

卐卐卐

श्रीराधाजी के भक्त श्रीश्यामानन्द जी

श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के भक्त हुए हैं–– श्रीदुःखी कृष्णदास जी। श्री गौरीदास पण्डित जी के शिष्य थे –– श्रीहृदय चैतन्यजी और श्रीहृदय चैतन्यजी के शिष्य थे श्रीदुःखी कृष्णदास जी।

गुरूदेव श्रीहृदय चैतन्य जी ने श्रीकृष्ण दास जी को वृन्दावन जाकर भजन करने का तथा श्रील जीव गोस्वमीजी से शास्त्र अध्ययन करने का उपदेश दिया। गुरूजी के विरह से व्याकुल होने पर भी, गुरू आज्ञा को

शिराधार्य कर वे नवद्वीप धाम के दर्शन करते हुए तथा सभी वैष्णवों को प्रणाम करके वृन्दावन चले आए।

श्रीधाम वृन्दावन में आकर उस समय के वैष्णव जगत में सर्वश्रेष्ठ पात्रराज श्रील जीव गोस्वामी जी के आनुगत्य में वे शास्त्रों को अध्ययन करने लगे। इधर जब श्री हृदय चैतन्य जी ने दुःखी कृष्णदास जी के द्वारा निष्ठा के साथ श्रील जीव गोस्वामीजी का आनुगत्य करने की बात सुनी तो उन्होंने श्रील जीव गोस्वामी जी को पत्र लिखा कि वे दुःखी कृष्णदास को अपना शिष्य समझकर उसका पालन करें।

श्यामसुन्दर महानन्द जन्माइल।
'श्यामानन्द' नाम पुनः वृन्दावने हैल।।
श्रीजीव गोस्वामी चारु चेष्टा निरखिया।
पढ़ाइल भक्तिग्रन्थ निकटे राखिया।।
(भक्ति रत्नाकर 1/401, 402)

शास्त्र अध्ययन के साथ ही कृष्णदास जी वृन्दावन के रासमण्डल की सफाई किया करते थे। ऐसे में एक दिन सफाई करते-करते उन्हें कोई अदभुत चमक वाली वस्तु दिखी। पास जाकर देखा तो वो एक नुपुर था। वे थोड़ा चौंके कि इस स्थान पर ये नुपुर कैसे आया?

बात कुछ ऐसी थी कि कृष्णदास जी के एकनिष्ठ भजन से, इतने विद्वान होते हुए भी, उनके कुँज में नित्यप्रति झाड़ू के द्वारा सफाई से श्रीमती राधाजी बहुत प्रसन्न थीं। उन पर कृपा करने के लिये बहाने से श्रीमती राधाजी ने अपना नुपुर ऐसे स्थान पर गिरा दिया, जहाँ पर श्रीकृष्णदासजी उसे देख सकें।

श्रीकृष्णदासजी ने आगे बढ़कर नुपुर को जब उठाया तो उनके पूरे शरीर में रोमांच हो उठा। वे समझ गए कि ये नुपुर साधारण नहीं है, अवश्य ही उनके शिक्षागुरू श्रील जीव गोस्वामी जी की आराध्या वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधारानी जी का है।

वृजवासीगण बताते हैं कि उधर झूला झूलते हुए श्रीमती विशाखा जी ने श्रीमती राधा जी के श्रीचरणों में नुपूर न देखकर उनसे जिज्ञासा कि तो राधा जी कुछ सोचते हुए बोलीं कि शायद कल रासमण्डल में ही गिर गया होगा। अपनी सखी के मनोभाव को ताड़ते हुए विशाखाजी एक अधेढ़ उम्र की स्त्री के वेष में जब वहाँ पहुँची तो उस समय कृष्णदास जी वहाँ झाड़ू दे रहे थे।

विशाखाजी अधेढ़ उम्र की स्त्री के रूप में कृष्णदास जी के पास गईं और बोलीं – भक्त! क्या सफाई करते समय कोई नुपुर तुम्हें मिला?

कृष्णदासजी – हाँ, मिला था, पर क्या वह आपका ही नुपुर है?

विशाखाजी – नहीं, हमारे घर में एक नई बहू आई है, उसका है।

कृष्णदासजी – ठीक है, फिर आप उस बहू को ले आओ, मैं उसी को वो नुपुर दूँगा।

विशाखाजी यह सुनकर वापिस चली गयीं और वहाँ जाकर उन्होंने सारी बात राधाजी को बताई।

राधाजी तो अपने प्रिय भक्त को दर्शन देना चाहती थीं। इसलिये बोलीं – हाँ! हाँ! चलो! विशाखे चलो उस भक्त के पास से नुपुर ले आते हैं।

इतना कहकर राधाजी, अपने समर्पित भक्त पर विशेष कृपा करने के लिये, उसे दर्शन देने के लिए अपने परिकरों के साथ, उस कुँज की ओर चल पड़ीं, जहाँ श्रीकृष्णदास जी सफाई कर रहे थे।

कुँज में आकर राधाजी एक वृक्ष के नीचे बैठ गयीं और उन्होंने विशाखाजी को भेजा कि जाओ और उस भक्त को बुलाकर ले आओ।

विशाखाजी फिर अधेढ़ उम्र की स्त्री के रूप में कृष्णदास जी के पास गईं और बोलीं – भक्त! नई

बहू आईं हैं, चलो नुपुर देकर आओ अपने हाथों से उनको।

कृष्णदासजी – वे कहाँ हैं?

जिस वृक्ष के नीचे राधाजी बैठी थीं, उधर इशारा करते हुए विशाखाजी ने बोला – वो देखो! वहाँ बैठी हैं, अपनी सहेलियों के साथ।

कृष्णदासजी ने झाड़ू देना रोका और राधाजी की ओर देखा। वे समझ गये कि ये कोई साधारण घर की बहू नहीं, मेरे शिक्षा गुरूदेव श्रीजीव गोस्वामी जी की सेव्या व आराध्या श्रीमती राधारानी जी हैं।

सारा शरीर रोमांचित हो गया कृष्णदासजी का, आँखों से आँसुओं की धारायें बहने लगीं और दिव्य प्रेम में विभोर होकर ज़मीन पर लोटपोट होने लगे। आँसुओं से वृजरज गीली हो गयी और वही उनके शरीर पर जहाँ–तहाँ लग गई।

विशाखाजी ने प्रेम में विभोर कृष्णदासजी को थपथपाया और कहा – भक्त! तुम्हारे शरीर में मिट्टी ही मिट्टी लग गयी है। सामने तालाब में स्नान करो और चलो बहूरानी तुम्हारी और तुम्हारे पास रखे नुपुर की प्रतीक्षा कर रही हैं।

विशाखाजी के कहने पर जैसे ही कृष्णदासजी ने कुण्ड में डुबकी लगाई, वे गोपी देह में बाहर आये। विशाखाजी उन्हें देखकर मुस्करायीं और हाथ पकड़ कर राधाजी के पास ले गयीं।

कृष्णदासजी ने राधाजी को प्रणाम किया और राधाजी के कहने पर श्रीकृष्णदसजी ने नुपुर देने से पहले भाव में उस नुपुर को प्रणाम किया। एक सखी ने मुस्कराते हुए नुपुर को राधाजी के चरणों में लगे लाल–लाल आलता से स्पर्श करवाया और नयी सखी के मस्तक पर लगा दिया। मस्तक से स्पर्श करते ही उनके ललाट पर नुपुर जैसा ही तिलक छप गया।

कृष्णदासजी ने राधाजी को पुन: दण्डवत् प्रणाम किया। प्रणाम करके जब ऊपर उठे तो देखा कि वहाँ कोई नहीं था। अकेले कृष्णदासजी थे और उनके मस्तक पर नुपुर का निशान था, लेकिन उनकी वह गोपी देह नहीं थी। उनके शरीर पर आलते से तिलक का निशान बिल्कुल नुपुर जैसा दिखता था।

कुँज से वापस आने पर श्रील जीव गोस्वामी जी ने श्रीकृष्णदास जी से तिलक के बारे में पूछा तो उन्होंने सारी घटना सुना दी।

श्रील जीव गोस्वामी जी ने यह जानकर कि श्रीकृष्णदास जी ने राधाजी को प्रसन्न किया है, श्यामा जी को आनन्द दिया है, इसलिए उन्हें 'श्यामानन्द' नाम प्रदान किया। आगे चलकर उनके सम्प्रदाय में इसी तिलक का प्रवर्तन हो गया।

इस प्रकार श्रीमती राधाजी ने एक नये तरीके से अपने भक्त पर कृपा की।

卐卐卐

धर्म परिवर्तित नहीं हो सकता

द्वारा: श्री भक्ति विचार विष्णु महाराज

श्रील भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी बताते हैं कि धर्म और religion में अन्तर होता है। चूंकि अंग्रेज़ी भाषा में कोई अन्य शब्द नहीं है इसलिये धर्म के लिये religion शब्द का उपयोग किया गया है। Oxford Dictionary के अनुसार *'religion' -- A system of faith, especially personal God entitled* जब obedience' से समझा जाता है।

इस बात को समझना चाहिए कि धार्मिक क्रियायों को करते रहना धर्म की परिभाषा नहीं है।

धार्मिक क्रिया अथवा पूजा तो एक विधि है -- भगवान को याद करने की। भगवान को याद करने से मन शुद्ध होता है और शुद्ध मन में भगवान के लिए प्रेम जागृत होता है, जिससे सभी प्राणियों के लिए प्रेम जागृत होता है। इससे किसी के प्रति हिंसा हो ही नहीं सकती। इसीलिए तो भगवद् प्रेम को सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा जाता है।

सच्चाई तो यह है कि सभी प्राणी रुह, आत्मा, energy या soul हैं, जिसने इस शरीर ने ढका हुआ है। यह शरीर -- अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश से बना है। साथ ही हमारा सूक्ष्म शरीर मन, बुद्धि और अहंकार का मिश्रण है। अवस्था और

जैसे रुह, आत्मा, energy या soul अलग-अलग भाषा में एक ही वस्तु को इंगित करते हैं। इसी प्रकार God, अल्लाह या भगवान भी एक ही सर्वश्रेष्ठतम् वस्तु को इंगित करते हैं। इसी प्रकार चाहे कोई किसी भी जाति का हो, किसी भी मजहब का हो, किसी भी रंग का हो, किसी भी प्रान्त का हो, किसी भी देश का हो, यही नहीं वह स्त्री हो या पुरुष...................... वह आसानी से इन शब्दों को समझ लेता है कि ये क्या इंगित कर रहे हैं?

जो भी मनुष्य रुह, आत्मा या soul में विश्वास करते हैं तथा जो भगवान-अल्लाह या God को मानते हैं और इनके बीच के सम्बन्ध को जानते हैं, वे एक ही धर्म को पालन कर रहे हैं अर्थात् वे सभी भगवद् प्रेम नामक धर्म का पालन कर रहे हैं।

धर्म परिवर्तन की जो बात करते हैं, वे जीव के वास्तविक धर्म से अनभिज्ञ हैं। धर्म किसे कहते हैं? धर्म कहते हैं 'स्वभाव' को। जैसे पानी का धर्म है तरलता, आग का धर्म है- जलाना। धर्म को हम न तो faith कह सकते हैं, और न ही religion.

परिस्थितियों के बदलने से शरीर के धर्म, परिवारिक धर्म व सामाजिक धर्म बदलते रहते हैं। जबकि आत्मा अपरिवर्तनीय है, इसलिये आत्मा का धर्म कभी भी नहीं बदलता।

आत्मा एक अणु-सच्चिदानन्द है और स्वभाव से ही वो विभु-सच्चिदानन्द की ओर आकर्षित होती है। विभु-सच्चिदानन्द को ही भगवान अथवा अल्लाह अथवा God कहते हैं। चूंकि हमारा अर्थात् आत्मा का स्वाभाविक आकर्षण है भगवान के लिए, जो कि पूर्ण आनन्द का स्रोत हैं इसलिए हरेक व्यक्ति ही नहीं, बल्कि हरेक प्राणी आनन्द प्राप्त करना चाहता है, ज्ञान चाहता है व हमेशा ज़िन्दा रहना चाहता है।

जीवात्मा से सम्बन्धित महान ज्ञान देने वाले श्रीमद् भगवद् गीता की तरह पवित्र जैवधर्म नामक ग्रन्थ के अनुसार धर्म भी दो प्रकार के होते हैं -- नित्य और नैमित्तिक। जैसे पानी का धर्म है तरलता या बहना। किन्तु बहुत ठंड होने से पानी इस धर्म को छोड़कर नैमित्तिक धर्म या एक अनित्य धर्म को अपनाकर, कठोर हो जाता है। इसी प्रकार अधिक गर्मी पाकर वह पानी, भाप के रुप में परिवर्तित हो जाता है। किन्तु ठंड अथवा गर्मी जैसी असाधारण परिस्थिती के हटते ही पानी वापिस तरल हो जाता है। इसलिये पानी का नित्य धर्म है -- तरलता जबकि बर्फ या भाप उसका नैमित्तिक धर्म है।

इसी प्रकार जीवों के भी दो धर्म होते हैं -- शरीर व संसार से सम्बन्धित नैमित्तिक धर्म और आत्मा से सम्बन्धित नित्य धर्म। इस बात की सही जानकारी न होने के कारण मनुष्य नैमित्तिक धर्म को ही अपना एकमात्र मुख्य धर्म समझ रहा है। ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि यह सोच गलत है।

जैसा कि शास्त्र कहते हैं कि हम सब आत्मा हैं। इसलिए हमें आत्मा के धर्म की पालना करनी चाहिए।

आत्मा का धर्म क्या है?

आत्मा का धर्म है, परमात्मा के लिए जीना।

आत्मा नित्य है, परमात्मा भी नित्य हैं और दोनों के बीच का सम्बन्ध भी नित्य है।

आत्मा का नित्य धर्म है, परमात्मा की सेवा।

यही आत्मा का स्वभाव है।

यही सभी मनुष्यों का व सभी प्राणियों का नित्य धर्म है। हमें इसकी पालना करनी चाहिए और यह परिवर्तनीय नहीं है।

卐卐卐

जान हथेली पर लेकर गुरू सेवा करने वालों के दो उदाहरण

(1)

छत्रपति शिवाजी के गुरु थे -- स्वामी समर्थ श्रीरामदास जी। उन्होंने अपने शिष्यों के साथ एक समय लीला रची। ये बात जब की है जब उन के शिष्य समुदाय के अन्दर एक प्रकार का घमण्ड आ गया था। प्राय: सभी शिष्य अपने को सर्वोपरि सेवक के रूप में परिचय देने के लिए लालायित थे।

एक दिन, जब कि समस्त शिष्य-मण्डल उपस्थित था तो वे ज़ोर-ज़ोर से कराहने लगे, मानो उनको बड़ी पीड़ा हो रही हो। समस्त शिष्य घबरा गये और सबने समर्थ महाराज से इसका कारण पूछा।

स्वामी जी ने अपने पैर की तरफ इशारा करते हुए कहा, 'पुत्रो ! मेरी पिंडली में एक बड़ा भारी फोड़ा हो गया है और असहनीय पीड़ा हो रही है।

शिष्य मण्डली में हलचल सी मच गई। सभी शिष्य चिकित्सा करवाकर गुरुजी को आराम पहुँचाने कि लिए आतुर हो उठे। कोई कुछ तो कोई कुछ उपचार करने के लिए कहने लगा।

स्वामी जी ने कहा, 'सुनो पुत्रो ! यह फोड़ा साधारण नहीं है और यह तुम्हारे किसी भी बाहरी उपचार से ठीक नहीं हो सकेगा।'

शिष्य आग्रहपूर्वक बोले, 'महाराज ! कुछ न कुछ उपचार तो अवश्य ही होना चाहिए।

स्वामी समर्थ जी महाराज ने उत्तर दिया, 'हाँ, वत्सो ! इसके लिए एक ही उपचार हो सकता है और उससे तुरन्त मेरी पीड़ा मिट जाएगी, परन्तु वह दु:साध्य है।'

इतना कहकर वे चीख-चीख कर पुन: कराहने लगे।

ये देखकर शिष्य बोले, ' महाराज ! कैसा भी दु:साध्य उपचार क्यों न हो, उसे करने में हमें प्राणों की भी चिन्ता नहीं है। आप उपाय बताएँ तो सही।'

स्वामी समर्थ जी सभी शिष्यों से यही कहलवाना चाहते थे। उनके इतना कहते ही स्वामी जी बोले, 'सुनो ! इसका उपचार यह है कि कोई मनुष्य मेरे इस फोड़े को मुँह लगाकर चूस ले तो मेरी वेदना मिट जायेगी, परन्तु वह चूसने वाला मर जायेगा।'

स्वामी जी की बात सुनते ही सब शिष्य एक-दूसरे की तरफ ताकने लगे। कोई भी इस कार्य के लिये आगे नहीं बढ़ा। अन्त में 'कल्याण' नामक शिष्य उठा और उसने स्वामी जी से फोड़े पर बंधी पट्टी खोलने के लिए कहा।

स्वामी जी ने कहा, 'पट्टी खोलने से मुझे असह्य वेदना होगी, इसलिये पट्टी नहीं खोलनी है। हाँ, पट्टी के एक कोने पर फोड़े का काला सा मुँह दिख रहा है, बस, वहीं से चूसना आरम्भ कर दो।'

कल्याण ने सद्गुरुचरण में सिर रखा और फोड़े में से चार-छ: घूंट लेने के बाद फोड़े को मुँह से चूसना आरम्भ कर दिया। उसे बहुत मधुर स्वाद मिल रहा था।

स्वामी जी चिल्ला उठे, 'अरे कल्याण! धीरे! अरे! धीरे!' पर कल्याण कब मानने वाले थे। कल्याण ने यथा शक्ति सारा फोड़ा चूस लिया। अन्त में स्वामी जी ने पट्टी खोली और पिंडली पर से एक आम की गुठली और छिलका निकल पड़ा। ये देखकर सभी शिष्य लज्जित हो गए।

पाठक समझ ही गए होंगे कि स्वामी जी ने पके हुए मीठे लम्बे आम पर ही पट्टी बांध ली थी।

आगे चलकर अपनी गुरु-भक्ति से कल्याण **समर्थ श्रीराम दास स्वामी महाराज** के प्रमुख शिष्य होकर 'कल्याण स्वामी' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

卐卐卐

(2)

समस्त गौड़ीय मठों व चैतन्य मठों के संस्थापक परमपूज्यपाद श्रीश्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद जी के शिष्य थे-- परमपूजनीय श्री भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज। इन महाराज की कद-काठी अपने गुरु श्रील प्रभुपाद जैसी ही थी। घटना उस समय की है जब अंग्रेजों ने भारत नहीं छोड़ा था। बंगाल में एक धार्मिक अनुष्ठान यानिकी श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा के लिए श्रील प्रभुपाद सभी शिष्यों के संग गये थे। नगर-संकीर्तन चल रहा था। नगर संकीर्तन तब प्रौढ़ माया मन्दिर के तंग बाजार में से गुजर रहा था तो कुछ विद्वेषी लोगों ने बाजार में बने मकानों की छत से श्रील प्रभुपाद पर ईंटें व पत्थर बरसाने शुरु कर दिये। बहुतों को चोट लगते देख, श्री केशव गोस्वामी जी, ने अपने गुरु को समीप के घर के भीतर खींच लिया। हमलावार बाजार में आकर उपद्रव कर सकते हैं, ऐसा सोचकर उन्होंने श्रील प्रभुपाद को एक ग्रामीण व्यक्ति की वेशभूषा में छुपाया व अपने गुरु और विश्व की धरोहर श्रील प्रभुपादजी को उन्होंने एक अन्य शिष्य के साथ पिछले रास्ते से एक घोड़ा-गाड़ी में निकाल दिया व स्वयं बरस रही ईंटों में श्रीप्रभुपाद के वेष में बाजार में चलने लगे, जैसे वे ही श्रील प्रभुपाद हों।

इस तरह उन्होंने एक ओर अपने गुरू को बचाया और दूसरी ओर स्वयं सारे झंझट को निपटाया।

श्रीमद्भागवत के अनुसार, 'ब्रयु: स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत' अर्थात गुरुदेव अपने निष्कपट एवं विश्वासी शिष्य के निकट ही शास्त्रों के गूढ़ रहस्य को प्रकट करते हैं।

यस्य देवे पराभक्ति, यथा देवे तथा गुरो:।
तस्यै ते कथिता: ह्यार्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।।
(श्वेताश्वर उपनिषद)

अर्थात् जिसकी भगवान में पराभक्ति, अनन्य भक्ति है तथा जिस प्रकार भगवान में है, उसी प्रकार की शुद्ध भक्ति अपने गुरुदेव में भी हो तो उसी महान-भक्त के हृदय में इन श्रुतियों का रहस्यमय अर्थ सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित होता है।

धन्य है ऐसे गुरू और धन्य हैं उनके ऐसे परिपूर्ण समर्पित शिष्य।

卐卐卐

शुभ कार्य को टालना नहीं चाहिये

एक महान वैष्णव आचार्य श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने शरणागत भक्त के हृदय के भावों को लिखते हुए बताया –

मारबि राखबि, जो इच्छा तोहारा......

हे भगवन्! आप मुझे रखो चाहे मारो, मैं कुछ नहीं बोलूँगा............ऐसी स्थिति को प्राप्त कर लेता है – शरणागत भक्त। उसे न तो मृत्यु, न कंगाली, न बीमारी और न ही बेइज्जती से कोई भय होता है। बहुत पैसा मिले, दीर्घ जीवन मिले, बहुत सम्मान मिले तो भी ठीक और अगर नहीं मिले तो भी ठीक।

शरणागत भक्त का एक ही भाव होता है कि मैं वही क्रिया करूँ जिससे मेरे ठाकुर प्रसन्न हों। 24 घंटे इसी भाव में डूबकर वह भक्ति के अनुकूल कार्यों को, भगवान की प्रसन्नता के अनुकूल कार्यों को ही करता रहता है। इसके इलावा भक्ति के प्रतिकूल कार्यों को करना तो दूर, अगर उनके लिए उसके मन में भाव भी उठे तो उसे भी वह तिरस्कार कर देता है।

कभी–कभी पुराने संस्कारवश मन में तो भाव आ सकते हैं, उनको वो टाल देता है, हटा देता है।

भगवान श्रीरामचन्द्र के बाण से जब रावण ज़मीन पर गिर गया तो भगवान श्रीराम ने श्रीलक्ष्मण से कहा – रावण बहुत ज्ञानी है, इसका प्रशासन बहुत अच्छा रहा है क्योंकि इसने अपने राज्य को बहुत समृद्ध रखा था। अति समृद्धि के कारण लोग रावण की लंका को सोने की लंका कहते थे। इससे जरूर कुछ ज्ञान लेना चाहिये। इसके इलावा ये रावण हमारे पिताजी–दादाजी की उम्र से भी ज्यादा उम्र के हैं, तो जाओ कुछ शिक्षा लेकर आओ।

लक्ष्मणजी अपने बड़े भाई की आज्ञा से रावण के पास गए, प्रणाम किया व कहा – मैं श्रीराम का अनुज लक्ष्मण आपसे कुछ शिक्षा लेने आया हूँ।

रावण ने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप लेटा रहा। श्रीलक्ष्मण ने दो–तीन बार प्रार्थना की, लेकिन रावण कुछ नहीं बोला।

श्रीलक्ष्मण वापिस लौट आए और श्रीराम जी से कहा – आप क्या बात कर रहे हैं, वो हमें उपदेश–निर्देश देगा क्या? जिसके सारे वंश को हमने खत्म कर दिया हो, वो भला हमें क्यों उपदेश देने लगा? वो तो हमारे विरुद्ध ही बहुत कुछ बुरा सोचता होगा! मन ही मन हमें गाली देता होगा। वह भला हमें उपदेश क्यों देगा?

भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने कहा – भाई लक्ष्मण! जो ज्ञानी होते हैं, वे ऐसा नहीं करते, चलो मैं

चलता हूँ तुम्हारे साथ।

भगवान श्रीराम जी धीरे-धीरे कदमों से चलते हुए रावण के पास गए, उन्होंने दोनों हाथ जोड़े व कहा - राजा दशरथ के पुत्र मैं व मेरा अनुज लक्ष्मण, आपके सामने आपको हाथ जोड़कर अभिवादन करते हैं और आपसे कुछ ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखते हैं। हमें कुछ उपदेश दीजिए।

रावण हल्का सा मुस्कुराया व बोला - लक्ष्मण ये होता है ज्ञान लेने का तरीका। मैं जानता हूँ कि श्रीराम परब्रह्म हैं। परब्रह्म होते हुए भी वो किस तरह से मेरे पैरों की ओर खड़े हैं। लक्ष्मण, ज्ञान लेने के लिए झुकना होता है। तुम तो मेरे सिरहाने पर खड़े होकर बोल रहे थे कि मुझे ज्ञान दो।

रावण ने श्रीराम की ओर देखते हुए कहा - श्रीराम! मैं आपको क्या ज्ञान दूँ? आप तो असीम ज्ञान वाले हैं। फिर भी आपको अपना अनुभव मैं बताना चाहता हूँ। ....वहाँ पर बहुत सी बातें रावण ने बोलीं, उसने यह भी कहा कि मैं इतना शक्तिशाली था कि देवता मेरे घर में पानी भरते थे मतलब कि वे मेरे अधीन रहकर मेरी गुलामी करते थे। वे मेरे अधीन रहकर मेरे सारे काम करते थे।

रावण ने कहा - श्रीराम! मैंने एक दिन सोचा कि लंकावासियों के लिए और कुछ अच्छा करता हूँ। क्या करूँ? मैं कुछ ऐसा करता हूँ कि यहाँ से स्वर्ग तक सीढ़ियाँ बनवा देता हूँ ताकि अगर मेरे लंकावासियों की घूमने की इच्छा हो तो स्वर्ग में रहकर आएं।

श्रीराम! मैं यह कर सकता था क्योंकि सारे देवता मेरे अधीन थे परन्तु जिन दिनों मैं इस कार्य को करने की सोच रहा था, उन्हीं दिनों श्रीराम आपने इस लक्ष्मण से मेरी बहिन के नाक-कान कटवा दिए तो वो रोती-रोती मेरे पास आई और मुझसे बोली - भैया! ये मेरी नहीं, आपकी नाक कटी है। मैं तो तिलमिला गया। मुझे गुस्सा आ गया। और आगे जो हुआ वो आप सब जानते ही हैं।

लक्ष्मण! मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरे मन में बड़ा ही अच्छा कार्य करने की इच्छा थी, स्वर्ग तक मार्ग बनाने की, सीढ़ी बनाने की। किन्तु मैं अपनी बहन सुर्पणखा की बात सुनकर उतावला हो गया और अहंकारवश गलत मार्ग पर चला गया।

मैंने अच्छे कार्य को टाल दिया और बुरा कार्य करने चल दिया। परिणाम आपके सामने है।

मेरा अनुभव है कि शुभ कार्य को टालना नहीं चाहिए, अच्छा कोई विचार मन में आ जाए, कोई अच्छी बात मन में आ जाए, तो उसे शीघ्रता से कर देना चाहिए और बुरे विचार को टाल देना चाहिए।

'शुभस्य शीघ्रं, अशुभस्य कालहरणम्।'

भक्त भी यही करता है। भक्ति के अनुकूल कार्यों को करता है और प्रतिकूल भाव को टालता रहता है।

लेखक: - श्री भक्ति विचार विष्णु महाराज

卐卐卐

श्रीनित्यानन्द प्रभु

(1)

श्रीनित्यानन्द प्रभु की स्तुति, श्रीविश्वम्भर जी द्वारा

जब श्रीविश्वम्भर अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुजी नवद्वीप धाम में श्रीनित्यानन्द प्रभुजी से पहली बार मिले तो उन्होंने कहा – आज मेरे लिए बड़ा ही शुभ दिन है। मैंने आज चारों वेदों का सार – 'भक्ति योग' के दर्शन कर लिए हैं। आप तो भगवान की शक्ति ही हैं। कृष्ण नाम से आप में ये जो आँसू, रोम का पुलकित होना, हुँकार, गर्जन आदि होता है, क्या ये एक साधारण मनुष्य के लिए सम्भव है?

एक बार भी इस भक्ति योग के साक्षात् स्वरूप (श्रीनित्यानन्द प्रभु जी) का दर्शन करने वाले को श्रीकृष्ण कभी नहीं छोड़ते। जो मनुष्य आपका भजन करता है, वही श्रीकृष्ण की भक्ति को पाता है। आप चौदह भुवन को पवित्र करने वाले हैं। आपका चरित्र अचिन्त्य, अगम्य व गूढ़ है। जो एक क्षण भी आपका संग प्राप्त कर लेता है, चाहे वह कितना भी पापी क्यों न हो, उसका कभी अमंगल नहीं होता। मैं समझ गया हूँ कि श्रीकृष्ण मेरा उद्धार करना चाहते हैं, तभी तो आप जैसे महापुरुष को मेरे पास, मेरा कल्याण करने के लिए भेजा है।

बड़े भाग्य से आपका दर्शन मिला है। जो भी आपको भजता है, उसे श्रीकृष्ण-प्रेम प्राप्त हो जाता है।

(2)

श्रीनित्यानन्द प्रभु व श्री चैतन्य महाप्रभुजी की प्रथम वार्तालाप

प्रथम भेंट होने पर श्रीचैतन्य महाप्रभुजी व श्रीनित्यानन्द प्रभुजी कुछ देर तो एक दूसरे को देखने में ही खोए रहे। कुछ देर बाद श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने कहा – यह पूछने से भी डर लगता है कि आप कहाँ से आ रहे हैं?

चंचल मति व वृज बालक का भाव लिए श्रीनित्यानन्द प्रभुजी ने कहा – मैंने अनेक तीर्थ किए। श्रीकृष्ण के जितने धाम हैं, उनमें उनकी खोज की। स्थान तो सब देखे पर श्रीकृष्ण नहीं दिखे। सज्जन लोगों को भी पूछा कि श्रीकृष्ण कहाँ हैं? वृज का वह चोर कहाँ गया?

मेरे पूछने पर उन्होंने कहा – श्रीकृष्ण तो गौड़ देश में हैं। कुछ ही दिन पहले वे गया से लौटे हैं। आजकल तो वे अपने ही नाम का कीर्तन करने में लगे रहते हैं।

यह बात सुनते ही मैं उन चोर को मिलने चला आया हूँ। यह सोचकर कि चलो उस चोर से मैं अपना भी उद्धार करवा लूँ। मेरा यहाँ आना सफल हो गया है क्योंकि मैंने उस चोर यानि कि आप को पकड़ लिया है। अब

आप को छोड़कर मैं भला कहाँ जाऊँगा?

श्रीमहाप्रभुजी बोले – हम सब बड़े ही सौभाग्यशाली हैं, जो आप जैसा भक्त यहाँ उपस्थित हुआ है। आपकी कृपा से ही कलि के घमण्ड का दलन होगा। आपकी ही कृपा से पतित व सांसारिक विषय भोगों में रमे हुए व्यक्तियों को उद्धार होगा। आपके होने से ही त्रिभुवन पवित्र होता है। आपकी महिमा को साधारण व्यक्ति भला कैसे जान सकता है?

कुछ देर इस प्रकार दोनों की बातें चलती रहीं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु व श्रीनित्यानन्द प्रभु की जब आपसी बातचीत समाप्त होने को थी तो भक्तों ने कीर्तन शुरु कर दिया। भक्तों का कीर्तन सुनकर व देखकर दोनों प्रभु आनन्द से नृत्य करने लगे।

नृत्य-कीर्तन की समाप्ति पर सभी भक्तों ने श्रीनित्यानन्द प्रभुजी को प्रणाम किया व उनके श्रीचरणों की रज को मस्तक पर ग्रहण किया।

भक्तों की आपसी चर्चा में श्रील मुरारि गुप्त जी ने कहा – आप दोनों की बातें तो आप दोनों ही जानें। हम सब तो कुछ समझ ही नहीं पा रहे हैं कि आप दोनों हैं कितने महान।

श्रीवास जी ने कहा – हम भला कैसे कुछ समझेंगे? यहाँ तो मानो माधव और महादेव दोनों ही एक दूसरे का पूजन कर रहे हैं।

श्रील गदाधर जी ने कहा – मुझे तो ये दोनों श्रीराम-श्रीलक्ष्मण ही प्रतीत हो रहे हैं।

इस प्रकार कोई आपको श्रीकृष्ण - श्रीबलराम तो कोई श्रीकृष्ण-अर्जुन कहकर स्तुति करने लगा।

किसी ने कहा – देखो! देखो! लगता है कि इनकी पुरानी जान-पहचान है, ये ईशारों ही ईशारों में न जाने क्या-क्या बात कर लेते हैं, पता ही नहीं चलता।

इस प्रकार भक्त आप दोनों के दर्शनों से प्रसन्न होकर विभिन्न बातें बनाते रहे। श्रीमन् महाप्रभुजी भक्तों के साथ घर की ओर चलने लगे और मार्ग में भक्तों को नित्यानन्द जी की महिमा बताते रहे।

भगवान श्रीकृष्ण के संगी, सखा, भाई, छत्र, शैया, वाहन आदि सब कुछ श्रीबलराम ही तो हैं। श्रीबलराम (श्रीनित्यानन्द) अपनी इच्छा से नाना रूप धरकर श्रीमहाप्रभुजी की सेवा करते हैं। आपकी ही कृपा से जीव श्रीमन् महाप्रभुजी की सेवा कर सकता है। आपकी निन्दा करने वाले को कभी भी श्रीकृष्ण भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। जैसे रघुनन्दन और यदुनन्दन में केवल नाम का ही भेद है, ऐसे ही श्रीनित्यानन्द और श्रीबलदेव में भी केवल नाम-मात्र का ही भेद है। आपका भजन करने वाला संसार सागर में नहीं डूबता।

卐 卐 卐

विरह संवाद

दो महान वैष्णवों का एक साथ गोलोकधाम गमन

अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के संस्थापकाचार्य नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी की दो विभूतियाँ......................परम वैष्णव पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्ति निकेतन तूर्याश्रमी महाराज तथा निष्कपट व सरल वैष्णव पूज्यपाद मथुरा प्रसाद बाबाजी महाराज एक साथ स्वणम गमन कर गये।

पहले 20 दिसम्बर को दोपहर 3 बजकर 40 मिनट पर पूज्यपाद तूर्याश्रमी महाराज जी गये, तत्पश्चात् 22 दिसम्बर को सफला एकादशी के दिन प्रात: 6 बजकर 45 मिनट पर पूज्यपाद मथुरा प्रसाद बाबा महाराजजी गोलोक धाम सिधारे।

दोनों की जोड़ी, दोनों को आध्यात्मिक मित्रता लगभग 64 वर्षों की थी। पूज्यपाद तूर्याश्रमी महाराजी महान वैष्णव होने के साथ-साथ दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे जबकि बाबजी महाराज पूरे संस्थान में विग्रह सेवा के सर्वोत्तम पुजारी थे। नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी के जन्म शताब्दी महोत्सव वर्ष में उन्होंने बताया था कि जीवन में कई बार उनकी भगवान श्रीकृष्ण जी से बातचीत हुई।

जीवन के अन्तिम क्षणों में जिस प्रकार पूज्यपाद तूर्याश्रमी महाराज अपने जीवन को श्रीगुरू पादपद्मों में समर्पण की बात कर रहे थे, उसी प्रकार बाबाजी महाराज भी जीवन के आखिरी पलों में मन ही मन भगवान की आरती कर रहे थे व वैष्णवों को प्रसाद बाँट रहे थे।

पूज्यपाद तूर्याश्रमी महाराज जी ने कई वर्षों तक भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की आविर्भाव स्थली व बाल्य लीला भूमि मायापुर की सेवा के लिए अथक परिश्रम किया था इसलिए वे पुष्प समाधि के रूप में मायापुर धाम में विराजित हो गये हैं तो बाबाजी महाराज जी ने कई वर्षों तक श्रीधाम वृन्दावन में श्रीराधा-गोविन्द जी की सेवा की इसलिए वे वृन्दावन धाम के वृन्दादेवी के बगीचे में पुष्प समाधि के रूप में विराजित हो गये हैं।

दोनों आध्यात्मिक मित्रों में पूज्यपाद तूर्याश्रमी महाराज जी की देह ने अग्नि में समर्पण से पूर्व पंचामृत के इलावा गंगा जल से स्नान किया तो बाबा महाराज जी ने यमुना जल में स्नान किया। यद्यपि दोनों आध्यात्मिक मित्र आज गोलोक धाम में अपने गुरूदेव के आराध्य की सेवा में नियोजित हो गये हैं परन्तु उनके बिना श्रीनवद्वीप मण्डल व श्रीवृज मण्डल का गौड़ीय वैष्णव समाज अपने आप को लुटा हुआ सा महसूस कर रहा है।

नित्यलीलाप्रविष्ट पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्
भक्ति निकेतन तूर्याश्रमी महाराज जी की जय!

नित्यलीलाप्रविष्ट पूज्यपाद मथुरा प्रसाद
बाबाजी महाराज जी की जय!